शिक्षा : पंचायत और विकेन्द्रीकरण

मिथक और यथार्थ

❑ परोमेश आचार्य

अनुवाद : सुरेश पंडित

पंचायती राज प्रणाली भारत में राज्य सत्ता के विकेन्द्रीकरण का आधार मानी गयी है । शिक्षा को पंचायती राज के अन्तर्गत लाकर इसके स्थानीय प्रबंधन की संभावनाएं देखी गयी हैं । उल्लेखनीय है कि शैक्षिक प्रबंधन के विकेन्द्रण और शिक्षा के जनतांत्रिकरण का मुद्दा भी लगातार उठता रहा है । 73 वें संविधान संशोधन के बाद प्रभावी पंचायती राज प्रणाली शैक्षिक विकेन्द्रीकरण और प्रारंभिक शिक्षा के सार्वजनीनकरण की दिशा में कितनी कारगर हुई है, यह देखना निश्चय ही एक जरूरी उपक्रम है । पश्चिम बंगाल देश के उन राज्यों में से है जिनके बारे में माना जाता है कि वहां पंचायती राज ने जड़ें जमा ली हैं । इस शोधपत्र में पश्चिम बंगाल में पंचायत, विकेन्द्रीकरण और शिक्षा के अन्तर्सम्बन्धों की वस्तुपरक छानबीन की गयी है।

प्रस्तावना

समस्त देशवासियों को साक्षर बनाने के संविधान द्वारा दिये गये निर्देश पूरे न होने की वजह से केन्द्र और राज्यों की सरकारों को संवैधानिक दायित्वों का निर्वाह करने के लिए विभिन्न प्रकार की योजनाबद्ध रणनीतियां बनाकर उन्हें क्रियान्वित करने के लिये अब उद्यत होना पड़ रहा है । उनमें से एक रणनीति के क्रियान्वयन को सुविधाजनक बनाने के लिए केन्द्रीय सरकार ने संविधान में एक संशोधन तक कर डाला है । भारतीय संविधान के 73 वें व 74 वें संशोधन के अनुसार पंचायतों को सरकार के तीसरे स्तर की मान्यता दे दी गई है और उन्हें सार्वजनीन अनिवार्य तथा निशुल्क प्रारंभिक शिक्षा के क्रियान्वयन की जिम्मेदारी सौंप देने की बात मान ली गई है । वर्ल्ड बैंक, यूएनडीपी, यूनिसेफ, योरोपियन कमीशन सरीखी विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय एजेन्सियों ने भारत सरकार को कई तरह से पंचायती राज और गैर सरकारी संस्थाओं को शैक्षिक प्रबंधन सौंपकर अपने अधिकार को विकेन्द्रित करने के लिए प्रोत्साहित किया है। विकास से संबंधित प्रशासन को विकेन्द्रित करने के लिए पंचायती राज को एक प्रमुख एजेंसी माना गया है ।

वास्तव में पंचायती राज को हमारे राजनेताओं और योजना निर्माताओं ने भारतीय प्रशासन और राज्य व्यवस्था की बहुत सी स्थानीय बीमारियों के लिए एक रामबाण औषधि के बतौर देखा है। एक तरह से यह केन्द्रीय और राज्य स्तर की सत्ताओं द्वारा अपनी जिम्मेदारियों से पीछा छुड़ाने और उन्हें पंचायती राज पर डाल देने का गैरजिम्मेदारना प्रयास है । यह बताना दिलचस्प होगा कि जो ये संवैधानिक संशोधन पंचायती राज को तीसरे स्तर की सरकार बनाने और विकास कार्यक्रमों में तृणमूल स्तर के लोगों की भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए किये गये हैं उनमें, अफसोस है, इस बात पर ध्यान ही नहीं दिया गया है कि वास्तव में ये प्रावधान उन सिद्धांतों का ही उल्लंघन करते हैं जिन पर संपूर्ण भारतीय प्रशासनिक ढाँचा खड़ा है । भारतीय ग्राम समाज की देशज विकेन्द्रित व्यवस्था के विपरीत भारतीय प्रशासन केन्द्रित, उत्तरदायी और व्यक्ति निरपेक्ष ढाँचे पर बना व विकसित हुआ है (स्टोक्स 1992) । औपनिवेशिक ताकतों द्वारा विकसित प्रशासन की यह केन्द्रीकृत और निर्वैयक्तिक व्यवस्था ऐसे सकारात्मक सिद्धांतों पर आधारित थी जो आम लोगों को ऐसा समूह मानती थी जिनका विकास किया जाना है । दूसरी ओर विकेन्द्रीकरण और पंचायती राज का तब तक कोई मतलब नहीं होता जब तक वे लोगों की भूमिका को अपने मामलों में स्वयं निर्णय लेने और अपनी परिभाषा के अनुसार जीने की बात को नहीं मानते हैं । पंचायती राज की रचना के लिए भारतीय संविधान में संशोधन करते समय, आश्चर्य है इस मूलभूत द्विभाजकता की ओर से पूरी तरह आँख मूंद ली गई । भारतीय प्रशासन की वर्तमान संरचना में पंचायती राज के लिये अपनी इच्छा से स्वतंत्र दायित्व निर्वाह के स्थान पर एक मातहत, परोपजीवी की भूमिका निभा सकना ही संभव रह गया है ।

इस शोध पत्र में पंचायती राज की सार्वजनीन प्रारंभिक शिक्षा के काम को आगे बढ़ाने में भूमिका, शैक्षिक प्रबंधन के विकेन्द्रीकरण और उसके परिणामों का पता लगाने का प्रयास किया गया है । इस अध्ययन का संदर्भ पश्चिम बंगाल को रखा गया है क्योंकि प्राय:

यह माना जाता है कि यहां पंचायती राज ने जड़ें जमा ली हैं । पश्चिम बंगाल में पंचायतों के चुनाव निश्चित समयावधि में होते हैं और पंचायती संस्थाएं ठीक तरह से बनाई जाती हैं । पंचायतों को अपने काम चलाने के लिये राज्य सरकार प्रतिवर्ष निश्चित धनराशि आवंटित करती है । पंचायतें स्वयं अपनी ठोस राजस्व आय प्राय: पैदा नहीं करतीं । वे राज्य सरकार के दिशा-निर्देशों के अनुसार ही हर काम करती है। उनके पास स्वेच्छा से अपनी योजना बनाने की कोई गुंजाइश नहीं रहती ।

यह जानना दिलचस्प होगा कि पश्चिम बंगाल में पंचायतें औपचारिक तौर पर सार्वजनीन प्रारंभिक शिक्षा को चलाने के लिए उत्तरदायी नहीं बनाई गई हैं और न ही वे सैकण्ड्री या उच्चतर शिक्षा के लिए उत्तरदायी बनाई गई हैं । जिला स्तर पर 'ड्रिस्ट्रिक्ट प्राइमरी स्कूल कौंसिल' नाम की पृथक् संस्थायें बनी हुई हैं और सरकार द्वारा सार्वजनीन प्राथमिक शिक्षा को जिला स्तर पर चलाने का काम औपचारिक तौर पर उन्हें सौंपा गया है । राज्य स्तर पर भी इनके ऊपर एक संस्था है जिसे ''वेस्ट बंगाल बोर्ड ऑफ प्राइमरी एज्यूकेशन'' कहा जाता है । यह जानना और भी रोचक होगा कि सार्वजनीन प्रारंभिक शिक्षा किसी की कार्यसूची में नहीं है । स्टेट बोर्ड या डिस्ट्रिक्ट कौंसिलें केवल प्राथमिक शिक्षा की जिम्मेदारी वहन करती हैं जबकि सैकेण्ड्री शिक्षा, जिसमें कक्षा पांच से ऊपर की कक्षाएं शामिल होती हैं, का दायित्व ''डायरेक्टरेट आफॅ एज्यूकेशन'' तथा ''वेस्ट बंगाल बोर्ड ऑफ सैकेण्ड्री एज्यूकेशन'' का है । यद्यपि कक्षा पांच को प्राथमिक स्तर में ही शामिल माना जाता है लेकिन पश्चिम बंगाल में प्राथमिक स्कूल चार तक की कक्षाओं वाले ही हैं । यह एक ऐसी असंगति है जो भारतीय शिक्षा में अन्तर्निहित है। कक्षा आठ तक की प्रारंभिक शिक्षा पर ''केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड'' (सीएबीई) द्वारा 1944 में की गई पुरजोर सिफारिशों तथा भारतीय संविधान के नीति निर्देशक सिद्धांतों के बावजूद सारे देश में कोई ध्यान नहीं दिया गया । आश्चर्य है न तो केन्द्र सरकार और न ही राज्य सरकारों ने कभी इस असंगति पर स्कूल शिक्षा के लिए नियम और कानून बनाते समय अथवा सार्वजनीन प्रारंभिक शिक्षा की योजना बनाते समय ही कोई ध्यान दिया ।

यह बात सच हो सकती है कि जब पहले बीस के दशक में प्राथमिक शिक्षा संबंधी बिल पर बहस हुई थी और पहला देहात प्राथमिक शिक्षा का एक्ट 1930 में पास हुआ था तब बंगाल में हालात वास्तव में आठ साल की प्रारंभिक शिक्षा कार्यक्रम के लिये अनुकूल नहीं थे । लेकिन जब भारतीय संविधान बना तब तो वहां के हालात वैसे ही नहीं रहे थे । पिछली सदी के बीसवें और तीसवें दशक में साक्षरता का स्तर भयावह रूप से निम्न था । वहां, खासतौर से ग्रामों में साक्षरता का वातावरण बिल्कुल नहीं था । शिक्षा के लिये मांग आम जनता की ओर से अभी आनी शेष थी। भौतिक सुविधाओं के अलावा अपेक्षित योग्यता प्राप्त शिक्षकों की उपलब्धता भी सीमित थी । इन परिस्थितियों के तहत सार्वजनीन प्रारंभिक शिक्षा तो क्या सार्वजनीन प्राथमिक शिक्षा का काम भी बहुत कठिन दिखाई देता था।

पिछली शताब्दी के साठ के दशक में स्थिति बहुत बदल गई थी । 1930 के प्राथमिक शिक्षा अधिनियम ने बंगाल में शिक्षा को राजनीतिक कार्यसूची में ला दिया था । धीरे-धीरे लेकिन निश्चयपूर्वक साक्षरता के लिए माहौल बन रहा था और शिक्षा के लिये मांग जोर पकड़ रही थी । यद्यपि प्राथमिक शिक्षा को अभी सार्वजनीन बनाया जाना बाकी था फिर भी प्राथमिक शालाओं और छात्रों की संख्या प्रचुरता से बढ़ गई थी । साठ के दशक के दौरान शैक्षिक योजना निर्माण में एक नये परिवर्तन, रुझान की बहुत अधिक आवश्यकता थी । लेकिन दुर्भाग्यवश भारतीय प्रशासन उस चुनौती को उठाने में असफल हो गया और राजनेताओं ने आम लोगों की शिक्षा को राष्ट्र निर्माण के ऐजेन्डे के रूप न ले उसका राजनीतिकरण करना अधिक शुरू कर दिया । विचित्र होते हुए भी यह बात सच है कि उस समयावधि में यद्यपि शिक्षकों की संख्या बढ़ी और उनकी सेवा सुरक्षा व वेतन संरक्षण को राजनीतिक एजेन्डे में, खास तौर पर विरोधी दलों की कार्यसूची में, स्थान मिला । लेकिन यह भी सच है कि उसी समय में पतन की प्रक्रिया भी प्रारंभ हो गई ।

इतिहास की ओर मुड़कर देखते हुए

प्राथमिक और/अथवा प्रारंभिक शिक्षा के प्रबंधन को विकेन्द्रित करने के आजकल हो रहे प्रयत्नों को समझने के लिए इस प्रक्रिया के इतिहास पर एक नजर डाल लेना काफी उपयोगी हो सकता है । विकेन्द्रीकृत शैक्षिक प्रबंधन की नई रणनीति को जिस प्रकार धूमधाम के साथ अंगीकार किया गया है उसमें किसी को भी बुनियादी तौर पर कोई भी बात नई या खास नहीं मिलेगी । 1919 की ही तो बात है, जब बंगाल में पहली बार प्राथमिक शिक्षा के विस्तार और नियमन के लिये एक अधिनियम पास हुआ था । वास्तव में पिछली सदी के बीसवें दशक में सार्वजनीन तथा अनिवार्य, निशुल्क प्राथमिक शिक्षा बंगाल में शैक्षिक विचार विमर्श के केन्द्र में पहले से आ चुकी थी । 1921 में बंगाल के सारे जिला बोर्ड एक अधिवेशन में मिले और उन्होनें यह निर्णय लिया कि प्राथमिक शिक्षा को निशुल्क और अनिवार्य रूप से उपलब्ध कराने के इरादे को जितना जल्दी संभव हो सके एक नीति निर्देशक विचार के रूप में स्वीकार किया जाए (बिस 1921 पृ.20) । एल.एस.एस.ओ. माले ने जो उस समय लोकशिक्षण के बंगाल में डायरेक्टर थे, ई.ई. बिस को प्राथमिक शिक्षा को उन्नत करने तथा फैलाने के लिए एक

कार्यक्रम बनाने को नियुक्त किया । बिस ने अपनी रिपोर्ट 1921 में दी । उसी साल 1919 के अधिनियम में संशोधन किया गया और पहले इसके लिये सारी म्यूनिसिपल कमेटियों को और बाद में 1885 के बंगाल लोकल सैल्फ गवर्नमेंट अधिनियम के तहत सारे यूनियन बोर्डों को इसके कार्य क्षेत्र में शामिल कर लिया गया । लेकिन कलकत्ता नगर निगम और चटगांव नगरपालिका क्षेत्रों को छोड़ बाकी स्थानों पर यह बहुत लंबे समय तक प्रभावी नहीं हुआ। 1927 में सारे बंगाल के देहातों को शामिल करने के लिये एक बिल व्यापक अधिनियम बनने के लिये बहस में आया। 1930 में बंगाल (देहात) प्राइमरी एज्यूकेशन एक्ट प्राथमिक शिक्षा की प्रबन्ध व्यवस्था को आंशिक रूप से विकेन्द्रीकृत करने के लिये, अस्तित्व में आया । (सेन, 1941, आचार्य 1996 तथा 1998)

इस अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार उस समय विद्यमान डिस्ट्रिक्ट बोर्डों के अतिरिक्त एक और जिला स्तरीय ढांचा 'डिस्ट्रिक्ट स्कूल बोर्ड' नाम से बनाया जाना था । इसका काम बंगाल के देहात में प्राथमिक शिक्षा की सुविधाओं को फैलाना था । इसके लिये उसे जहां जरूरत हो वहां नये स्कूल खोलने, प्राइवेट रूप से संचालित स्कूलों को मान्यता व सहायता देने, स्कूलों की देखरेख रखने तथा अध्यापकों की वार्षिक वेतन वृद्धियों और प्रोविडेन्ट फण्डों की व्यवस्था के दायित्व सौंपे गये । डिस्ट्रक्ट स्कूल बोर्डों को जिले की प्राथमिक शिक्षा संबंधी सुविधाओं की मांगों को सुनिश्चित करने के लिए सर्वेक्षण करने और मांग के अनुसार अध्यापक नियुक्त करने का दायित्व भी सौंपा गया । उन्हें शिक्षा के लिये स्थानीय कर लगाने हेतु और जहां संभव हो वहां प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य करने के लिये भी प्राधिकृत कर दिया गया । तथापि यूनियन बोर्डों को इस अनिवार्यता को अपनी अपनी सीमाओं में अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार लागू करने का दायित्व सौंप दिया गया । यह अपेक्षा की गई कि यह अनिवार्यता आगामी दस वर्षों में लागू कर दी जायेगी। (सेन उपरोक्त, आचार्य उपरोक्त)

उल्लेखनीय है कि तब तक डिस्ट्रिक्ट बोर्ड चुनी हुई संस्थाएं बन गये थे। यद्यपि इनके मतदाताओं की संख्या सीमित थी । दूसरी ओर डिस्ट्रिक्ट स्कूल बोर्डों को शुरू में नामजद सरकारी संस्थाएं बनना था । यह बात दोनों के लिए विवाद का विषय बन गई, क्योंकि निर्वाचित डिस्ट्रिक्ट बोर्ड एक दूसरी ऐसी संस्था बनने देने के विरूद्ध थे जो नामजद लोगों से बनी हो । डिस्ट्रिक्ट बोर्ड मुख्यत: हिन्दू बहुमत वाले थे । उन्हें यह डर था कि यह समाज के उन जैसे स्वाभाविक नेताओं की अवमानना करने की सरकार की एक चाल है । डिस्ट्रिक्ट बोर्डों के हिन्दू सदस्य और हिन्दू राजनैतिक नेता भी आम तौर पर यह मानते थे कि यह गैर प्रजातांत्रिक ढंग से पीछे के दरवाजे के जरिये, मुसलमानों को शिक्षा क्षेत्र का नेतृत्व दे देने का एक प्रयास है। (आचार्य 1998) दूसरा विवादास्पद मुद्दा उस नये शिक्षा उपकर को लागू करने को लेकर था जिसे हिन्दू नेता, जिनमें अधिकतर के स्थायी बन्दोबस्त के तहत जमींदारी या तालुकदारी हित निहित थे, यह मानते थे कि यह उनके भू-नियमन अधिकारों का सरासर उल्लंघन है । (आचार्य उपरोक्त)

इस व्यवस्था की क्रियाशीलता पर नजर रखने के लिए प्रति 100 विद्यालयों पर एक सब इंस्पेक्टर ऑफ स्कूल्स जिला निरीक्षणालय के अधीन रखने का प्रावधान किया गया और यह निरीक्षणालय डायरेक्टर ऑफ पब्लिक इन्स्ट्रक्शन्ज के तहत रखा गया । यह अपेक्षा की गई कि ये सब इन्स्पेक्टर एक निश्चित समयावधि के अन्दर इन स्कूलों को देखेंगे और इनमें चलने वाली अध्ययन-अध्यापन की गतिविधियों का परिवीक्षण कर अपनी रिपोर्ट डिस्ट्रिक्ट इन्स्पैक्टर ऑफ स्कूल्स के कार्यालय को भेजेंगे । इन सब इन्स्पेक्टरों की रिपोर्ट पर डिस्ट्रिक्ट स्कूल बोर्ड विद्यालयों को केवल मान्यता व सहायता देने का काम करेगा । वास्तव में स्कूल इन्स्पेक्टरों की भूमिका स्कूल, जिला और राज्य स्तर के अधिकारियों के बीच मध्यवर्ती (बिचोलिया) की रह गई थी । इसके अतिरिक्त उन्हें एक परिवीक्षणकर्ता एजेन्सी के रूप में काम करने की भूमिका भी निभानी होती थी ।

एक प्रावधान 'सैन्ट्रल प्राइमरी एज्यूकेशन कमेटी' का भी रखा गया । इसका काम प्राथमिक शिक्षा के प्रभावी रूप से काम करने के लिए नीतियां बनाना, पाठ्य पुस्तकों की स्वीकृति देने की व्यवस्था करना तथा पाठ्यचर्या तैयार करना था। वर्तमान में कार्यरत 'वेस्ट बंगाल बोर्ड ऑफ प्राइमेरी एज्यूकेशन' की तरह उस कमेटी का डिस्ट्रिक्ट स्कूल बोर्डों पर कोई प्रशासनिक नियंत्रण नहीं था । वह अधिकतर अकादमिक नीति संबंधी योजना बनाने में लगी रहती थी । मार्च 1937 में एक प्रस्ताव के जरिये बंगाल सरकार ने प्राथमिक शिक्षा के लिए पाठ्यचर्या पर विचार-विमर्श हेतु एक कमेटी बनाई। इस कमेटी ने राय दी कि प्राथमिक विद्यालयों में तथा सैकेण्ड्री स्कूलों की प्राथमिक कक्षाओं में अंग्रेजी की शिक्षा नहीं दी जानी चाहिये । (सेन पृ. 327)

स्वाधीनता प्राप्ति के बाद 1950 में 1930 के बंगाल (ग्रामीण) प्राइमरी एज्यूकेशन एक्ट में कई बडे संशोधन किये गये। ये संशोधन पश्चिम बंगाल में सार्वजनीन और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के लक्ष्य को पाने की ओर उठे कदम थे । इसमें यह अधिकार दिया गया कि यूनियन बोर्डों, यूनियन कमेटियों या पंचायतों की सीमा में आने वाले किसी भी क्षेत्र में अनिवार्यता को लागू किया जा सकता है और यह भी निर्देश दिये गये कि ग्रामीण क्षेत्रों में एक

बार किसी छात्र के कक्षा एक में प्रवेश ले लेने के बाद यह कोशिश की जाये कि वह कोर्स पूरा होने तक पढ़ना जारी रखे। (आचार्य 1996)

पश्चिम बंगाल में शिक्षा की प्रगति की 1947-48 से 1951-52 के पांच वर्षों की समीक्षा करते हुए ''क्विनक्वेनियल (पंचवर्षीय) रिव्यू'' राय देता है कि ''प्राथमिक शिक्षा को देहातों में अनिवार्य करने की दस वर्षीय योजना ने इस अवधि में उल्लेखनीय प्रगति की है। 94 यूनियनों तथा 3664 गांवों में अनिवार्यता लागू की गई है ।'' उसने इसकी राह में अर्थात् अनिवार्यता लागू करने में आई कठिनाइयों का भी उल्लेख किया है । उसका कथन है कि अभिभावकों और माता-पिताओं को अपने अपने कामों के लिये स्कूल जाने की उम्र के लड़कों के सहयोग की प्राय: जरूरत पड़ती रहती है और स्कूलों से बच्चों के गैरहाजिर रहने का यह एक प्रमुख कारण है । स्कूलों के लिये अटेन्डेन्स कमेटियां बनी हुई हैं और दण्ड का प्रावधान भी है लेकिन ये स्थानीय कमेटियां दोषियों के विरूद्ध कठोर कार्यवाही करने के लिये कभी-कभी ही तत्पर होती हैं। (क्विनक्वेनियल रिव्यू 1959, पृ. 4-5) उल्लेखनीय है कि यह बात आज भी उतनी ही सच है जितनी तब थी और कोई भी राजनीतिक दल इस तरह के अलोकप्रिय कर देने वाले कदम अब भी उठाने को तैयार नहीं है । इसके अलावा यह भी सत्य है कि इस तरह की कार्यवाहियाँ विकेन्द्रीकरण की मूल भावना का ही अतिक्रमण करती हैं क्योंकि इसका तो आधार ही शिक्षा की अनुभूत आवश्यकता होता है । सरकार द्वारा आरोपित और आगे बढ़ाई जा रही यह सार्वजनीन प्रारंभिक शिक्षा की संपूर्ण नीति वास्तव में पैदा की गई आवश्यकता के सिद्धांत पर आधारित है । अब भी समस्या यह है कि इस पैदा की हुई आवश्यकता वाली नीति को अनुभूत आवश्यकता वाली नीति में कैसे रूपान्तरित किया जाय ? (आचार्य 1999, भट्टाचार्य 1991) पश्चिम बंगाल में पंचायतें यह साबित नहीं कर सकी हैं कि वे इस काम को करने के लायक हैं । इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि हर्टोग कमेटी और 1944 का सेन्ट्रल एडवाइजरी बोर्ड ऑफ एज्यूकेशन (सीएबीई) दोनों शिक्षा की प्रशासनिक व्यवस्था के विकेन्द्रीकरण के कट्टर विरोधी थे । बी.जी.खेर तक भी, जो एक राज्य सरकार और स्थानीय संस्थाओं के बीच संबंधों का अध्ययन करने वाली कमेटी के प्रधान थे, व्यक्तिगत तौर पर प्राथमिक शिक्षा की प्रशासनिक व्यवस्था को स्थानीय संस्थाओं को सौंप देने के विरूद्ध थे । (आचार्य 1999)

1963 में, नगरपालिका क्षेत्रों में नि:शुल्क और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा चालू करने के लिए 'वेस्ट बंगाल अरबन प्राइमरी एज्यूकेशन एक्ट' पास किया गया । लेकिन नि:शुल्क और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की नगरपालिका क्षेत्रों में प्रगति संतोषजनक नहीं रही । 1964 में 24 परगना जिले के खरदाह तथा मुर्शिदाबाद के जंगीपुर नगरपालिका क्षेत्रों में निशुल्क और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा चालू की गई लेकिन वह मात्र औपचारिकता ही साबित हुई। 1963 से पहले ही कलकत्ता कोर्पोरेशन ने अपने पांच वार्डों में अनिवार्यता लागू की । पश्चिमी बंगाल में शिक्षा की 1957 से 1963-64 तक की प्रगति की समीक्षा के बारे में सैप्टेनियल (सप्तवर्षीय) रिव्यू के मतानुसार 6 से 11 आयुवर्ग के केवल 81 प्रतिशत बच्चे इन अनिवार्यता वाले क्षेत्रों में 1963-64 में स्कूल में उपस्थित हो रहे थे । जबकि 1960-61 में यह प्रतिशत 79.64 था । यह स्थिति स्वीकृत पाठ्य-पुस्तक और लेखन सामग्री जरूरत मन्द बच्चों को मुफ्त मुहैया कराने के बावजूद थी । ऐसे बच्चों की संख्या सारे नामांकित बच्चों का 20 प्रतिशत थी । (सैप्टेनियल रिव्यू 1970) फिर भी यदि हम उन्हें ज्यों का त्यों सही मान लें तो इनमें 68 प्रतिशत का ड्राप आउट और अपव्यय नामांकित आंकड़ों को निरर्थक बना देता है। देश में प्राथमिक शिक्षा की लगभग वैसी प्रवृत्ति आज भी देखी जा सकती है।

उस समय की सरकारी रिर्पोटों ने पश्चिमी बंगाल में नि:शुल्क और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा को चलाने में मिली असफलता को निम्न शब्दों मे प्रकट किया था - 'लेकिन जिन स्थानीय संस्थाओं को प्राथमिक शिक्षा का संयोजन और प्रबंधन का काम सौंपा गया था वे इसे संतोषजनक तरीके से नहीं कर पाई । इसके मुख्य कारण दो थे - दलीय राजनीति और सांप्रदायिक विसम्मति ।' (क्विनक्वेनियल रिव्यू 1959) यह भी ध्यातव्य है कि 1930 में जो बंगाल (देहात) प्राथमिक शिक्षा बिल पास होकर अधिनियम बना वह पास भी आसानी से नहीं हुआ था । अलग डिस्ट्रिक्ट स्कूल बोर्ड और शिक्षा पर नये उपकर का बंगाल कौंसिल के हिन्दू सदस्यों ने जमकर विरोध किया था, बल्कि यह कहना सही होगा कि वह बिल हिन्दू सदस्यों की लगभग गैर हाजरी में पास हुआ था । इस बिल ने अभूतपूर्व सांप्रदायिक विक्षोभ पैदा कर दिया था । शिक्षा पर राजनीतिक नियंत्रण के सवाल ने इसके असली उद्देश्य को अर्थात् निशुल्क और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा चालू करने को निस्तेज कर दिया। यह और भी ज्यादा हैरानी की बात है कि हमने राज्य में प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य और सार्वजनीन बनाने से संबंधित कानून बनाते समय इतिहास के इस पहले पढ़े पाठ को ही भुला दिया। (आचार्य 1998)

प्राथमिक शिक्षा और पंचायत: दो अनमेल अधिनियम (एक्ट)

आजादी के बीस से अधिक वर्षों और असफलता की कहानियों के बाद पश्चिम बंगाल ने 'वेस्ट बंगाल प्राइमरी एज्यूकेशन एक्ट' 1973 में पास किया । नये तरीके से नि:शुल्क और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा लागू करने के लिए उसने सारे पिछले अधिनियमों को दरकिनार कर दिया । यह बात पुन: ध्यान देने योग्य है कि आज भी पश्चिम बंगाल में आठवीं कक्षा तक की प्रारंभिक शिक्षा लागू करने के लिए कोई अधिनियम नहीं है । यह नया अधिनियम प्राथमिक शिक्षा के लिये उसी तरह की राज्य स्तरीय और जिला स्तरीय संस्थाएं बनाने का प्रावधान करता है जिस तरह की वेस्ट बंगाल प्राइमरी एज्यूकेशन बोर्ड राज्य स्तर पर और डिस्ट्रिक्ट प्राइमरी स्कूल कौंसिल (डीपीएससी) जिला स्तर पर करती थी । इसके अनुसार बोर्ड और कौंसिलें, दोनों चुनी तथा नामजद संस्थाएं होंगी। यद्यपि इन संस्थाओं को बनाने के लिए आज तक चुनाव नहीं हुए हैं । वास्तव में 1987 में उस अधिनियम में एक संशोधन के जरिये तदर्थ संस्थाओं को प्रचलित प्रथा के अनुसार नियमित कर दिया गया है। बेशक ये नामजद संस्थाएं अधिकतर सत्तासीन राजनीतिक दलों के अनुयायियों से बनी हैं । इस प्रक्रिया से प्राथमिक शिक्षा का निम्नतम स्तरीय राजनीतिकरण पूरा हो गया है और इसने सारी लोकतांत्रिक मर्यादाओं, सिद्धांतों को निरर्थक बना दिया है । औपनिवेशिक व्यवस्था का सबसे बड़ा दुर्गुण अर्थात केन्द्रीय नियंत्रण चालू है। लेकिन कार्यकुशलता विदा हो गई है । विदेशी आर्थिक़ सहायता और ऋण के कारण प्राथमिक शिक्षा के लिए बढ़ रही धनराशि के साथ इस व्यवस्था में भिन्न-भिन्न स्तरों पर भ्रष्टाचार भी खतरनाक मात्रा में बढ़ रहा है । वर्तमान 'डिस्ट्रिक्ट प्राइमरी एज्यूकेशन प्रोग्राम' (डीपीईपी) इस तरह का एक ध्यान देने योग्य मामला है । बिना उपयुक्त योजना और जिम्मेदार कार्यकारी समूह बनाये धन देना और उसके सार्थक उपयोग की अपेक्षा करना अन्तत: उस व्यवस्था को नष्ट ही करता है। यह वह समय है जब इस तरह की स्थितियों पर ध्यान दिया जाना चाहिये । कोई हैरानी की बात नहीं है कि कोर्ट केस शैक्षिक प्रशासन के विभिन्न स्तर के अधिकारियों का बहुत सारा समय जाया कर देते हैं। लेकिन कोर्ट केस तब बढ़ते हैं जब प्रशासन और अधिकारी वर्ग में ईमानदारी कम होती है या कम होती दिखाई देती है ।

हैरानी वाली बात यह भी है कि 1973 में बना और 1993 तक संशोधित हुआ 'वेस्ट बंगाल प्राइमरी एज्यूकेशन एक्ट' और 1973 में बना तथा 1993 तक संशोधित हुआ 'वेस्ट बंगाल पंचायत एक्ट' दोनों में ही कोई भी ऐसी धारा नहीं है जो पंचायती संस्थाओं के विभिन्न स्तरों और डीपीएससी तथा बोर्ड जैसी प्राथमिक शिक्षा की संस्थाओं के बीच होने वाले संबंधों का साफ-साफ खुलासा करती हो । यह और आश्चर्य की बात है कि 1973 के वेस्ट बंगाल पंचायत एक्ट में पंचायत समिति और जिला परिषद के स्तरों पर शिक्षा, संस्कृति और क्रीड़ा की स्थायी समिति बनाने का प्रावधान है । इसका काम प्राथमिक शिक्षा के इन क्षेत्रों में ध्यान देने और विकास करने का है । प्राथमिक विद्यालयों के रख रखाव के लिए राशि स्वीकृत करने का भी प्रावधान है । लेकिन ऐसा कोई संवैधानिक प्रावधान नहीं है जो किसी डिस्ट्रिक्ट प्राइमरी स्कूल कौंसिल (डीपीएससी) के प्रतिनिधि को उक्त स्थायी समितियों में शामिल करने की इजाजत देता हो । वास्तव में ऐसी कोई संवैधानिक परिभाषा नहीं है जो पंचायत, डीपीएससी तथा स्टेट बोर्ड के बीच के संबंधों का खुलासा करती हो । (आचार्य, 1996 तथा डायग्राम 'ए') यह तथ्य भी नोट करने लायक है कि डीपीएससी के नामजद संस्था होने के कारण इसका पूरा नियंत्रण सत्तारूढ़ दल के हाथ में रहता है । लोकतांत्रिक आदर्शों की दृष्टि से इसकी दशा डिस्ट्रक्ट स्कूल बोर्ड से भी खराब है । पुराने कानून के अनुसार डिस्ट्रिक्ट स्कूल बोर्ड की मीटिंग में कोई भी व्यक्ति उपस्थित हो सकता था और कार्यवाही देख सकता था यद्यपि उसे कार्यवाही में भाग लेने की आज्ञा नहीं होती, अब डीपीएससी एक ऐसी बन्द संस्था है जिसके कामों में कोई पारदर्शिता नहीं है । डीपीएससी और पंचायत राज संस्था के बीच के संबंध आज भी अस्पष्ट हैं ।

प्राथमिक शिक्षा : क्या कहता है पिछले दशकों का विकास

ठीक तरह से समझने के लिए यह बात नोट करनी जरूरी हो सकती है कि पिछली सदी के आखिरी दो दशकों में जब पंचायत व्यवस्था पुरजोर तरीके से काम कर रही थी, बच्चों की आबादी, छात्र, स्कूल, शिक्षकों की संख्या तथा छात्र-अध्यापक और छात्र-स्कूल के अनुपात प्रकट करते हैं कि इन मामलों में प्राथमिक शिक्षा की उपलब्धि उत्साहवर्धक नहीं थी । सचाई तो यह है कि आजादी के बाद के दो दशकों में तुलनात्मक तौर पर वृद्धि दर बेहतर रही थी। ऐसा प्रतीत होता है कि आजादी के बाद से बच्चों की आबादी 6-11 आयुवर्ग में बड़ी तेज गति से बढ़ी । स्कूलों की छात्रों की संख्या तथा शिक्षकों की संख्या आजादी के बाद पहले तीन दशकों में अर्थात् 1950, 1960 और 1970 के दशकों में कमोबेश बच्चों की आबादी की वृद्धि के साथ कदम मिलाकर बढ़ सकी।

लेकिन शताब्दी के आखिरी दो दशकों में अर्थात् 1980 और 1990 के दशकों में इन क्षेत्रों में गिरावट की प्रवृत्ति आसानी से देखी जा सकती है। ये वही दशक हैं जिनके बारे में दावा किया जा जाता है कि पश्चिम बंगाल में इस अवधि में पंचायत प्रणाली ने जड़ें पकड़ ली थी । यह और भी अधिक विस्मय की बात है कि तीसरे दशक तक अर्थात् 1971-81 के बीच के समय में राज्य में जबर्दस्त राजनैतिक उथल-पुथल चलने के बावजूद वृद्धि दर अधिक अच्छी थी ।

डायाग्राम (अ)

पश्चिम बंगाल : स्कूल शिक्षा की संरचना तथा कार्य

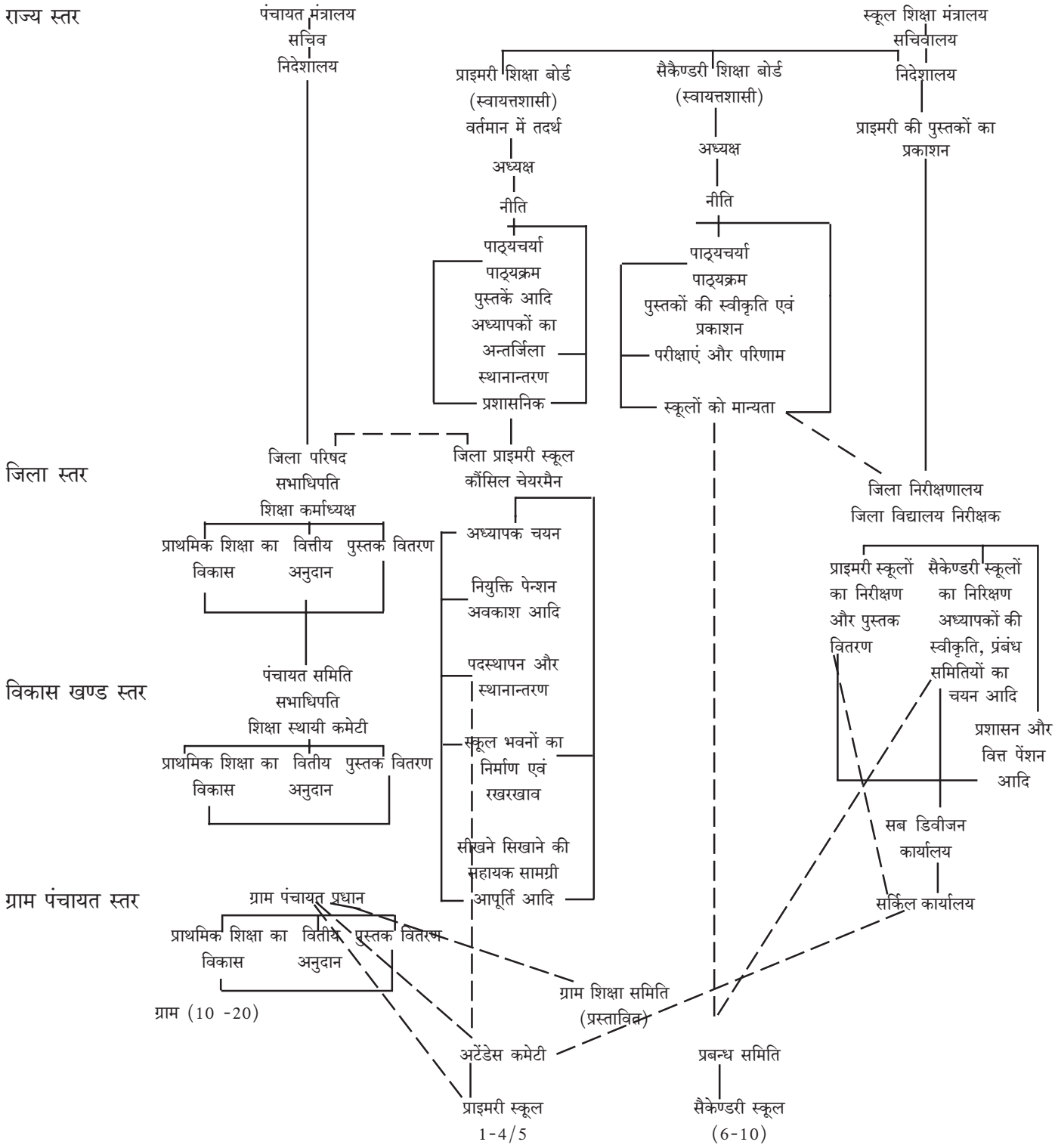

यह बात भी नोट की जा सकती है कि 1951-61 के दशक में छह से ग्यारह आयु वर्ग के बच्चों की आबादी केवल 11% बढ़ी जबकि स्कूलों, छात्रों और शिक्षकों की संख्या दुगुनी हो गई अर्थात् लगभग 100 प्रतिशत वृद्धि हुई । अगले दशक मे अर्थात् 1961 से 1971 में बच्चों की आबादी 29% बढ़ी जबकि स्कूलों की वृद्धि दर 16.2%, छात्रों की वृद्धि दर 52% और शिक्षकों की संख्या 37.2% बढ़ी । 1971-81 के दशक में बच्चों की आबादी 23%, छात्रों की संख्या 54% बढी जबकि स्कूलों और शिक्षकों की संख्या क्रमश: 35 और 39 प्रतिशत बढ़ी। (देखें सारणी संख्या -1)

तुलना की दृष्टि से 1981-91 में 6-11 आयु वर्ग के बच्चों की आबादी लगभग 14% बढ़ी जबकि स्कूलों, छात्रों और शिक्षकों की संख्या की वृद्धि दर क्रमश: लगभग 6%, 15%, 8% दिखाई दी । अगले 9 वर्षों में अर्थात् 1991-2000 में बच्चों की आबादी लगभग 29% बढ़ी जबकि स्कूलों की संख्या में मात्र 3% की बढ़त हुई । इससे छात्रों तथा शिक्षकों की संख्या वास्तव में बुरी तरह से गिर गई । छात्रों की संख्या 0.04% और शिक्षकों की संख्या 18.5% गिर गई अर्थात् लगभग 34 हजार शिक्षक कम हो गये । परिणाम यह हुआ कि छात्र-अध्यापक अनुपात जो 1951-52 में 1:34 था वह 1961-62 में 1:32, 1971-72 में 1:35, 1981-82 में 1:40, 1991-92 में 1:41 तथा 1999-2000 में 1:51 पर जाकर रुका । इसी तरह से प्रति स्कूल छात्रों की संख्या भी तेजी से बढ़ी अर्थात 1951-52 में जो 98 छात्र प्रति स्कूल थी, वह 1999-2000 में 146 छात्र प्रति स्कूल हो गई । (देखें सारणी संख्या -1) प्रति स्कूल अधिक छात्र संख्या होने के परिणामस्वरूप छात्र-अध्यापक के अनुपात में और क्लास रूम सुविधाओं में गडबड़ी पैदा हो गई जिससे सीखने-सिखाने के स्तर में भी गिरावट आई । ऐसा लगता है कि पिछले दशक में ड्रॉप आउट की दर 63% से 51% प्रतिशत पर गिरकर आ गई है । उस पर भी यह उसकी न रोकने की सरकारी नीति के कारण हुआ है जिसके अनुसार रजिस्टर से किसी बच्चे के नाम को आमतौर पर काटा नहीं जाता ।

सारणी - 1

पश्चिम बंगाल में प्राइमरी शिक्षा की प्रगति

कक्षा 1 से 4 (प्राइमरी स्कूल)

क्र.	आइटम	1951-52	1961-62	1971-72	1981-82	1991-92	99-2000
1	कुल आबादी	24,810,305	34,929,279	44,312,011	54,580,647	68,078,000	77,972,000
2	बच्चों की आबादी (6 से 11)	37,21,546	41,28,286	53,17,441*	65,49,677*	74,71,100	6,58,000@
3	प्राइमरी स्कूलों की संख्या (1-4)	15,119	30,535	35,484	47,940+	50,827	52,385
4	प्राइमरी स्कूल छात्रों की संख्या (1-4)	14,87,389	28,43,302	43,34,360	66,63,625+	76,46,689	76,43,253
5	अध्यापकों की संख्या	43,895	89,700	1,23,099	1,71,329+	1,84,748	1,50,546
6	छात्र अध्यापक अनुपात	34:1	32:1	35:1	40:1	41:1	51:1
7	प्रति स्कूल अध्यापकों की औसत सं.	2.9	2.9	3.5	3.6	3.6	2.9
8	प्रति स्कूल छात्रों की औसत संख्या	98	93	122	139	150	146
9	बच्चों की आबादी की वृद्धि दर	-	+10.9%	+29%	+23%	+14%	+29.3%
10	छात्रों की वृद्धि दर	-	+91.16%	+52.43%	+53.74%	+14.75%	-0.04%
11	अध्यापकों की वृद्धि दर	-	+104.5%	+37.2%	+39.2%	+7.8%	-18.5%
12	स्कूलों की वृद्धि दर	-	+101.96%	+16.20%	+35.10%	+6.02%	+3.07%
13	कक्षा 1 से 4 के नामांकन में ड्राप आउट	66.8%	70.8%	78%#	73%#	63%#	50.9%

नोट : 1971-72 तथा 1981-82 की बच्चों की आबादी की गणना कुल जनसंख्या में 12 प्रतिशत बढ़ाकर की गई है । + 1983-84 वर्ष के आंकड़े @ 1997-98 के आंकड़े, # ऑल इंडिया एज्युकेशन सर्वे क्रमश: 1973, 1978 व 1993 के ड्राप-आउट आंकडे ।

स्रोत :

(1) ''क्विनक्वेनियल रिव्यू ऑन प्रोग्रेस ऑफ एज्यूकेशन इन वेस्ट बंगाल'' (1947-48 से 1951-53, की अवधि के लिए) 1959 कलकत्ता ।

(2) ''सैप्टेनियल रिव्यू ऑन द प्रोग्रेस ऑफ एज्यूकेशन इन वेस्ट बंगाल'' (1957-64, की अवधि के लिए) 1970 कलकत्ता ।

(3) 'स्टेटिस्टिकल हैन्ड बुक; गवर्मेन्ट ऑफ वेस्ट बंगाल' (1974, 1988 और 1998), कलकत्ता ।

(4) 'सिलेक्टिड एज्यूकेशनल स्टेटिस्टिक्स', गवर्नमेंट आफॅ इन्डिया (1991-92 तथा 1996-97), दिल्ली ।

(5) एनुअल रिपोर्ट 1999-2000, डिपार्टमेन्ट ऑफ स्कूल एज्यूकेशन, गवर्नमेन्ट ऑफ वैस्ट बंगाल, कलकत्ता ।

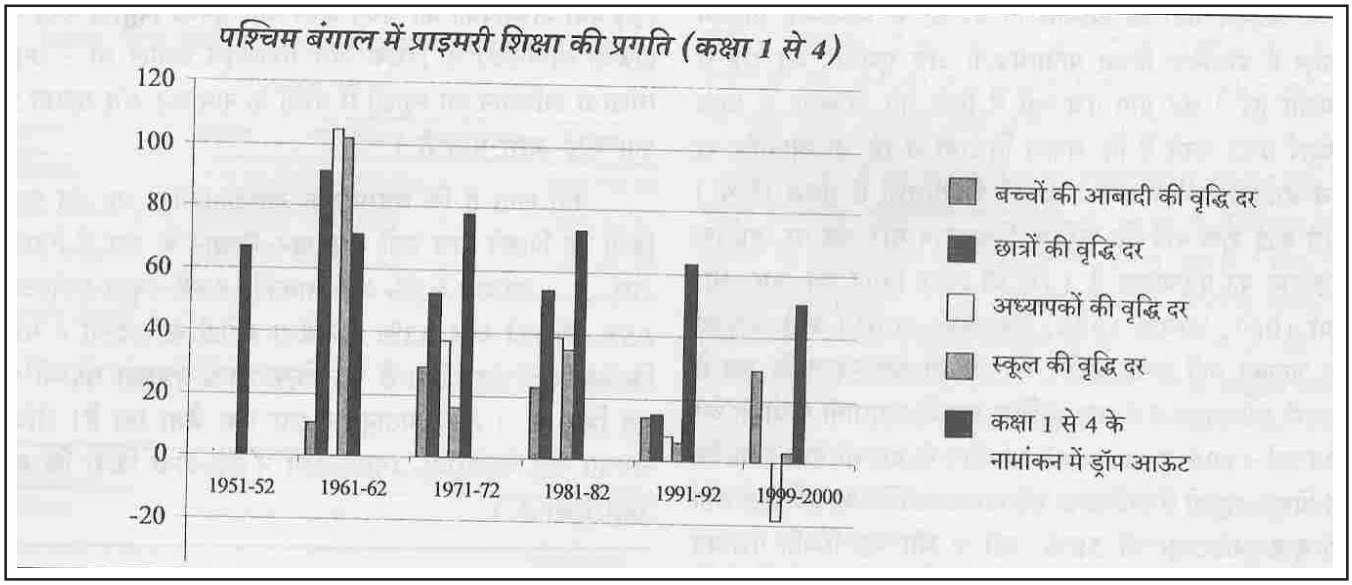

हाल में पश्चिम बंगाल में प्राथमिक स्कूलों के स्तर को जांचने के लिये जो कुछ अध्ययन किये गये हैं वे पक्के तौर पर कहते हैं कि वहां सीखने-सिखाने का स्तर वास्तव में गिर गया है। 1991 में 879 प्राइमरी स्कूलों के 11,410 छात्रों को लेकर किये गये अध्ययन से पता लगता है कि यदि राज्य को एक समग्र इकाई के रूप में लिया जाय तो 20.3 प्रतिशत छात्र ही ऐसे मिलते हैं जो न्यूनतम अपेक्षित स्तर तक पहुंचे हैं । यह भी उस स्थिति में जबकि बंगाली और गणित के परिणामों को समेकित कर लिया गया है । इसमें यह तथ्य और भी विरोधाभासी है कि अधिकतर स्कूल यह दावा करते हैं कि ''वे सतत मूल्यांकन योजना का पालन करते हैं'' (रॉय, मित्रा, रॉय 1995 पृ. 32) दूसरा अध्ययन 1995 में किया गया जिसमें तीन अलग अलग जिलों की छह पंचायत समितियों के सभी 73 स्कूलों को लिया गया । इन 73 स्कूलों में से 63 प्राइमरी स्कूल थे । इनमें कक्षा चार में नामांकित बच्चों में से 34% बच्चों की रेण्डम चयन के आधार पर परीक्षा ली गई तो पता लगा कि इनमें से केवल 9.8 प्रतिशत बच्चे बंगाली और गणित में न्यूनतम 50 प्रतिशत तथा उससे अधिक अंक प्राप्त कर पाये हैं। इसमें प्रश्न बनाने और क्रमबद्ध करने, परीक्षा कराने और उत्तर पत्रों की जांच करने की सारी प्रक्रिया प्राइमरी अध्यापकों और सब इंस्पेक्टरों के एक दल से पूरी करवाई गई क्योंकि वे ही लोग प्राइमरी स्कूलों में सीखने-सिखाने की प्रक्रिया की देखभाल करने के लिए जिम्मेदार थे । (आचार्य 1996)

दिलचस्प बात यह है कि अध्ययन किये गये 63 प्राइमरी स्कूलों में से केवल 5 स्कूल अच्छी पढ़ाई वाले स्कूल माने गये क्योंकि उनमें कक्षा चार की परीक्षा देने वाले सब छात्रों में 40% ने बंगाली और गणित में 50 प्रतिशत तथा उससे अधिक अंक प्राप्त किये थे । इस प्रसंग में उल्लेखनीय यह भी है कि 60 साल पहले भी ऐसे अच्छी पढ़ाई वाले प्राइमरी स्कूलों की संख्या यही थी। तीस के दशक के उत्तरार्ध में अविभाजित बंगाल के 64 हजार प्राइमरी स्कूलों में से पांच हजार स्कूलों को तत्कालीन एक विशिष्ट शैक्षिक अधिकारी ने अपने उदार अनुमान के आधार पर निरक्षरता दूर करने के काम में प्रभावी ढंग से योगदान करने वाले स्कूल माना था । (सेन 1941 पृ. 236, 237) वास्तव में बहुत समय पहले सैन्ट्रल एडवाइजरी बोर्ड आफ एज्यूकेशन (सीएबीई) ने अपनी 1944 की रिपोर्ट में पंचवर्षीय प्राइमरी स्कूल शिक्षा की प्रभावशालिता के बारे में कुछ संशय प्रकट किये थे । इसने अपना दृढ़ मत रखा था कि 6-14 आयुवर्ग के लिए बुनियादी शिक्षा एक पूरी तरह सुघटित इकाई है। उसे यदि इसी रूप में नहीं देखा गया तो इसकी सार्थकता नष्ट हो जायेगी । किसी भी दशा में ऐसी शिक्षा जो केवल पांच साल में और 11 वर्ष की आयु तक खत्म हो जाती है उसे जीवन या आजीविका के लिये पर्याप्त तैयारी नहीं माना जा सकता । जैसी स्थिति दिखाई देती है उसके अनुसार यदि एक सार्वजनीन बुनियादी शिक्षा की अनिवार्य पद्धति को अलग-अलग चरणों में चालू किया जा सकता है तो उसकी प्रगति अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग होनी चाहिये । (सार्जेन्ट 1944 पृ. 3) फिर भी इस सलाह पर किसी ने ध्यान नहीं दिया और हमारे राजनेता और योजना निर्माता उलटी दिशा में आगे बढ़ते रहे । और अब हम एक अंधी गली में नामांकन के फर्जी आंकड़ों, बढ़ती ड्रॉप-आउट दर और घटती उपलब्धियों के साथ आगे चले जा रहे हैं ।

पिछली सदी के अन्तिम दो दशकों में निस्सन्देह पश्चिम बंगाल में प्राथमिक शिक्षा मात्रात्मकता और गुणवत्ता की दृष्टि से कमजोर हुई । छह ग्राम पंचायतों में किये गये अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष प्रकट करते हैं कि सफल विद्यार्थी वे रहे जो आमतौर पर उच्च जातियों अथवा उच्च आय वर्ग के परिवारों से संबद्ध रहे थे । इसमें कोई शक नहीं कि शैक्षिक पिछड़ापन मोटे तौर पर आर्थिक पिछड़ेपन का परिचायक है । (के.वी.ईश्वर प्रसाद एवं आर. सी. शर्मा 1987, आचार्य 1994, रेखा कौल 2001) कोई आश्चर्य यह जानकर नहीं होना चाहिये कि जो भी श्रेष्ठ स्कूल के रूप में पहचाने गये स्कूल थे वे सब आर्थिक़ रूप से अग्रगामी गांवों के थे। (आचार्य 1996 पृ. 41-44) अध्ययन से यह भी पता लगा कि इन पिछड़े स्कूलों में अधिकतर की कम उपलब्धि के अतिरिक्त यहां की ड्राप-आउट दर भी 58% रही । और यह स्थिति पंचायत व्यवस्था की गहरी जड़ जमी होने और तथाकथित प्राइमरी शिक्षा के प्रशासन के विकेन्द्रीकरण के बावजूद रही । पंचायत व्यवस्था के शुरू होने से पहले और बाद की अवधि के ऊपर किये गये तुलनात्मक अध्ययन उस डर को पक्का करते हैं जिसे शिक्षाविदों और शैक्षिक प्रशासकों जैसे हरटोग, सार्जेन्ट तथा बी. जी. खेर ने प्रकट कर दिया था। बहुत पहले इन लोगों ने इस विकेन्द्रीकरण की नीति की बुद्धिमत्ता के प्रति अपना संदेह प्रकट कर दिया था । (बी. जी.खेर 1954)

एक अभिमत- अध्ययन के निष्कर्ष

छ: ग्राम पंचायतों के अभिभावकों, अध्यापकों स्कूल इंस्पेक्टरों, स्कूल कमेटी और पंचायतों के सदस्यों से प्राप्त किये गये अभिमतों का एक अध्ययन भी उपरोक्त निष्कर्षों की पुष्टि करता है। इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य यह पता लगाना था कि भिन्न-भिन्न श्रेणी के उत्तरदाताओं के अनुसार पंचायती राज के अधीन प्राइमरी स्कूल व्यवस्था कैसा काम कर रही है । अन्य बातों के अलावा उसमें चार प्रश्न पूछे गये थे - (1) क्या पिछले पांच वर्ष से गांव के स्कूल नियमित रूप से लग रहे हैं ? (2) इन पांच सालों में सीखने-सिखाने का शैक्षिक स्तर क्या ऊँचा उठा, नीचे गिरा या एक जैसा रहा है ? (3) क्या पंचायतों ने गांवों के स्कूलों के अच्छे प्रबंधन में पर्याप्त दिलचस्पी ली है ? (4) यदि पंचायतों को स्कूल शिक्षा की जिम्मेदारी सौंप दी जाय तो क्या यह ऊँची उठेगी, नीचे गिरेगी अथवा एक जैसी रहेगी ? दूसरे दो महत्वपूर्ण प्रश्न इस प्रकार थे : (1) क्या प्राइमरी शिक्षक नियमित ढंग से विगत पांच वर्षों से विद्यालयों में उपस्थित होकर अपने कर्तव्य का पालन करते रहे हैं? (2) क्या अध्यापकों का चयन करने और उनकी नियुक्ति करने की प्रक्रिया न्यायोचित है ? एक और महत्वपूर्ण सवाल था - संपूर्ण साक्षरता अभियान का स्कूलों में बच्चों के नामांकन और ठहराव पर क्या कोई असर पड़ा है ?

पता लगा है कि बहुसंख्यक उत्तरदाताओं ने यह मत प्रकट किया कि पिछले पांच वर्षों में सीखने-सिखाने के स्तर में गिरावट आई है । लगभग 85% अभिभावकों, 83% स्कूल इंस्पेक्टरों, 65% शिक्षकों और 63% अटेन्डेन्स कमेटी के सदस्यों ने माना कि वास्तव में स्तर गिरा है । लेकिन 73% पंचायत सदस्यों का मत भिन्न था । उनके मतानुसार स्तर एक जैसा रहा है। लेकिन लगभग नहीं के बराबर उत्तरदाताओं ने यह दावा किया कि स्तर उन्नत हुआ है ।

सारणी संख्या 2

पिछले पांच वर्षों में सीखने-सिखाने का स्तर की स्थिति

उत्तरदाता	ऊँचा उठा	नीचे गिरा	ज्यों का त्यों रहा	योग
अभिभावक	23(2.4)	803(85.1)	118(12.5)	944(100.0)
अध्यापक	47(15.6)	199(65.9)	56(18.5)	302(100.0)
अटेंडेंस कमेटी के सदस्य	8(8.9)	57(63.3)	25(27.8)	90(100.0)
पंचायत सदस्य	5(8.3)	11(18.3)	44(73.3)	60(100.0)
स्कूल इन्सपेक्टर	5(16.7)	24(83.3)	1(3.3)	30(100.0)

दिलचस्प तथ्य यह है कि बहुसंख्यक अभिभावकों, अटेन्डेंस कमेटी के सदस्यों और पंचायत के सदस्यों का मत था कि स्कूल नियमित रूप से नहीं चले हैं और अध्यापक भी अपने कर्तव्य पूरा करने में अनियमित रहे हैं । (देखें सारणी संख्या 3-4) पंचायत सदस्यों के द्वारा दिये गये इस बारे में उत्तरों की असंगति को यहां साफ तौर पर देखा जा सकता है। यदि उक्त अवधि में स्कूल नियमित रूप से नहीं चले और अध्यापक अपने कर्तव्य निर्वाह में अनियमित रहे तो शैक्षिक स्तर एक जैसा भला कैसे रह सकता है? ऐसा लगता है कि उन्होंने गिरावट की सचाई को इसलिये स्वीकार नहीं किया क्योंकि तब वे स्वयं भी इसके लिए जिम्मेदार ठहराये जा सकते थे। असल में उन्होंने अपनी जिम्मेदारी से बचने के लिये दूसरों के कन्धों पर दोष डाल दिया । लेकिन इस तरह अनजाने में वे स्वयं ही जाल में फंस गये । क्षेत्रीय जांचकर्ताओं के अनुभवों से पता लगता है कि पंचायत के सदस्य आम तौर पर सत्ता की राजनीति में ग्रामीण समाज के शैक्षिक विकास की अपेक्षा अधिक रुचि लेते हैं । हाँ; अपवाद तो यहां भी हो सकते हैं ।

सारणी संख्या 3

पिछले पांच वर्षों में गांवों के स्कूल किस तरह काम करते रहे ?

उत्तरदाता	नियमित	अनियमित	नहीं जानते	योग
अभिभावक	167(17.7)	777(82.3)	-	944(100.0)
अटेंडेंस कमेटी के सदस्य	32(35.6)	58(64.4)	-	90(100.0)
पंचायत सदस्य	13(21.7)	47(78.3)	-	60(100.0)

सारणी संख्या 4

पिछले पांच वर्षों में स्कूलों में शिक्षकों की उपस्थिति

उत्तरदाता	नियमित	अनियमित	नहीं जानते	योग
अभिभावक	270(28.6)	674(71.4)	-	944(100.0)
अटेंडेंस कमेटी के सदस्य	32(35.6)	58(64.4)	-	90(100.0)
पंचायत सदस्य	16(26.7)	44(73.3)	-	60(100.0)

यह जानना भी रुचिकर होगा कि 62% अभिभावक, 69% अध्यापक और 62% स्कूल कमेटी के सदस्यों का मत था कि पंचायतें अपने अपने क्षेत्रों के ग्रामों के स्कूलों के सही प्रबंधन में पर्याप्त रुचि नहीं लेती रही हैं । यह तथ्य जानना और भी अधिक रोचक होगा कि 76% अभिभावक, 64% अध्यापक 72% अटेन्डेंस कमेटी के सदस्य और लगभग 67% स्कूल इंस्पेक्टर मानते थे कि यदि देहाती क्षेत्रों की प्राइमरी स्कूल प्रणाली की देखभाल की संपूर्ण जिम्मेदारी पंचायतों को दे दी जाती है तो शिक्षा की गुणवत्ता निश्चय ही नीचे जायेगी । अपेक्षा के अनुरूप पंचायत सदस्यों के उत्तर अलग तरह के थे । उनमें से 45% मानते थे कि यदि प्राइमरी शिक्षा की पूरी जिम्मेदारी पंचायतों को सौंप दी जाय तो शिक्षा की गुणवत्ता में गिरावट आयेगी जबकि 42% सदस्य कहते थे कि इससे गुणवत्ता उन्नत होगी ।

(देखें - सारणी संख्या 5-6)

आश्चर्य है कि केवल कुछ ही उत्तरदाताओं का मत था कि संपूर्ण साक्षरता अभियान का बच्चों के स्कूल में नामांकन और ठहराव पर कोई सशक्त और सकारात्मक प्रभाव पड़ा है । मात्र 7% अभिभावक, लगभग 18% अध्यापक, 12% अटेंडेंस कमेटी के सदस्य और 15% पंचायत सदस्यों ने जोरदार तरीके से 'हाँ' की जबकि 44% अभिभावक, 28% अध्यापक, 38% अटेंडेंस कमेटी के सदस्य और 38% पंचायत सदस्यों की सोच थी कि संपूर्ण साक्षरता अभियान का बच्चों के नामांकन और ठहराव पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा है। फिर भी संख्या में कम होने के बावजूद यथेष्ट अनुपात में लोगों का यह मत था कि कम होते हुए भी कुछ प्रभाव तो बच्चों के नामांकन और ठहराव पर इस अभियान का पड़ा ही है। क्षेत्रों में काम कर रहे कार्यकर्ताओं के अनुभव से प्रतीत होता है कि उत्तरदाता इस प्रश्न का उत्तर देने के प्रति इसलिये भी उदासीन थे कि कहीं इससे सरकार उनसे नाराज न हो जाये ।

आश्चर्य है कि केवल कुछ ही उत्तरदाताओं का मत था कि संपूर्ण साक्षरता अभियान का बच्चों के स्कूल में नामांकन और ठहराव पर कोई सशक्त और सकारात्मक प्रभाव पड़ा है । मात्र 7% अभिभावक, लगभग 18% अध्यापक, 12% अटेंडेंस कमेटी के सदस्य और 15% पंचायत सदस्यों ने जोरदार तरीके से 'हाँ' की जबकि 44% अभिभावक, 28% अध्यापक, 38% अटेंडेंस कमेटी के सदस्य और 38% पंचायत सदस्यों की सोच थी कि संपूर्ण साक्षरता अभियान का बच्चों के नामांकन और ठहराव पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा है। फिर भी संख्या में कम होने के बावजूद यथेष्ट अनुपात में लोगों का यह मत था कि कम होते हुए भी कुछ प्रभाव तो बच्चों के नामांकन और ठहराव पर इस अभियान का पड़ा ही है। क्षेत्रों में काम कर रहे कार्यकर्ताओं के अनुभव से प्रतीत होता है कि उत्तरदाता इस प्रश्न का उत्तर देने के प्रति इसलिये भी उदासीन थे कि कहीं इससे सरकार उनसे नाराज न हो जाये ।

जो भी हो लगभग 42% अभिभावक, 50% अध्यापक, 51% कमेटी के सदस्य और 43% पंचायत सदस्यों के मत इस प्रकार थे - (देखें सारणी संख्या - 7)।

यह तथ्य फिर भी रोचक है कि अध्यापकों, अटेंडेंस कमेटी के सदस्यों और पंचायत सदस्यों की बहुत बड़ी संख्या मानती है कि अध्यापकों के चयन और नियुक्ति की वर्तमान प्रक्रिया न्यायोचित नहीं है और उसमें बदलाव लाने की जरूरत है । वास्तव में 70% अध्यापक 62% अटेंडेंस कमेटी के सदस्य और लगभग 77% पंचायत सदस्यों की मान्यता थी कि ये प्रक्रियाएं अन्यायपूर्ण हैं ।

(देखें, सारणी संख्या - 8)

भारी संख्या में लोगों का यह भी मानना था कि अध्यापकों का चयन शुद्ध योग्यता के आधार पर और बिना स्थानीय उम्मीदवारों को प्राथमिकता देते हुए कहीं से भी किया जाना चाहिये ।

(देखें - सारणी संख्या -9)

इस बात पर ध्यान देना और भी दिलचस्प है कि अधिकतर अभिभावक (78.5%), अध्यापक (80%), अटेंडेंस कमेटी के सदस्य (78.9%), पचांयत सदस्य (71.7%) और स्कूल इंस्पैक्टर (93%) का मत है कि अध्यापकों का चयन वर्तमान प्रथा के अनुसार डिस्ट्रिक्ट प्राइमरी स्कूल कमेटी द्वारा किये जाने के बजाय एक अलग स्कूल सर्विस कमीशन द्वारा होना चाहिये ।

(देखें सारणी संख्या 10)

सारणी संख्या 5

क्या पंचायतें स्कूलों के प्रबंध में पर्याप्त रूचि लेती हैं ?

उत्तरदाता	हां	ना	नहीं जानते	योग
अभिभावक	205 (21.7)	589 (62.4)	150(15.9)	944 (100.0)
अध्यापक	70 (23.2)	211 (69.9)	21 (7.0)	302 (100.0)
अटेंडेंस कमेटी के सदस्य	33 (36.7)	56 (62.2)	1 (1.1)	90 (100.0)

सारणी संख्या 6

यदि पंचायतों को स्कूली शिक्षा की पूरी जिम्मेदारी दे दी जाये तो प्रणाली में

उत्तरदाता	सुधार होगा	गिरावट आयेगी	ज्यों का त्यों रहेगा	नहीं जानते	योग
अभिभावक	120 (12.7)	725 (76.8)	99 (10.5)	-	944 (100.0)
अध्यापक	50 (16.6)	196 (64.9)	56 (18.5)	-	302 (100.0)
अटेंडेंस कमेटी के सदस्य	12 (13.3)	65 (72.2)	13 (14.5)	-	90 (100.0)
पंचायत सदस्य	25 (41.7)	27 (45.0)	8 (13.3)	-	60 (100.0)
स्कूल इन्सपेक्टर	5 (16.7)	20 (66.7)	3 (10.0)	2 (6.7)	30 (100.0)

सारणी संख्या 7

संपूर्ण साक्षारता अभियान का बच्चों के नामांकन और ठहराव पर प्रभाव

उत्तरदाता	हां	बहुत कम	कोई नहीं	नहीं जानते	योग
अभिभावक	67 (7.1)	393 (41.6)	415(44.0)	69 (7.3)	944 (100.0)
अध्यापक	54 (17.9)	152 (50.3)	86 (28.5)	10 (3.3)	302 (100.0)
अटेंडेंस कमेटी के सदस्य	11 (12.2)	46 (51.1)	32 (35.6)	1 (1.1)	90 (100.0)
पंचायत सदस्य	9 (15.0)	26 (43.3)	23(38.3)	2 (3.3)	60 (100.0)

दरअसल सब श्रेणियों के अधिकतर सदस्यों की राय थी कि न तो पंचायत न ही स्टेट बोर्ड आफॅ प्राइमरी एज्यूकेशन और सरकारी शिक्षा विभागों को प्राइमरी अध्यापकों के चयन का उत्तरदायित्व सौंपा जाना चाहिये । अध्ययनों से मिली जानकारियाँ प्रदर्शित करती हैं कि डिस्ट्रिक्ट प्राइमरी स्कूल कौंसिल, पंचायत संस्थाएं और शैक्षिक प्रशासकों की नेकनीयती बहुत अधिक संदेहास्पद हो गई है। यह भी प्रतीत होता है कि पंचायत सदस्य भी अध्यापकों के चयन और नियुक्ति के मामले में डिस्ट्रिक्ट प्राइमरी स्कूल कौंसिल से खुश नहीं है । यह सचमुच एक खतरनाक प्रवृत्ति है। अध्यापकों की नियुक्तियों को लेकर बढ़ते जा रहे अदालती मुकदमों के कारण उपरोक्त निष्कर्षो में स्पष्ट परिलक्षित हो रहे हैं । क्षेत्रीय कार्यकर्ताओं को डिस्ट्रिक्ट प्राइमरी कौंसिल और पंचायत संस्थाओं के बीच के संबंध भी संदिग्ध लगे । जिला परिषद के सभाधिपति और डिस्ट्रिक्ट प्राइमरी स्कूल कौंसिल के चेयरमैन के बीच अनौपचारिक स्तर पर अच्छी समझ हो सकती है क्योंकि दोनों ही शासक दल के साधारण सदस्य और सहयात्री होते हैं । लेकिन

उस स्तर के नीचे के इन दोनों संस्थाओं के सदस्यों में सहयोग का अभाव रहता है क्योंकि इनके संबंधों को औपचारिक रूप से कहीं परिभाषित नहीं किया गया है।

सहयोग की इस कमी का प्रतिबिंब गांवों में शैक्षिक सुविधाओं के विस्तार एवं वृद्धि में देखा जा सकता है । इसमें कोई हैरानी की बात नहीं है कि अभिभावकों, अटैंडेंस कमेटी के सदस्यों की काफी बड़ी संख्या और स्थानीय पंचायतों के बहुसंख्यक सदस्यों का मत है कि गांव में शैक्षिक सुविधाएं पर्याप्त नहीं हैं । (देखें- सारणी संख्या - 11)

रोचक बात यह भी है कि अभिभावकों और अध्यापकों की बहुत बड़ी संख्या मानती है कि निर्धारित पाठ्यपुस्तकें, जिन्हें शिक्षा विभाग बिना कसी मूल्य के मुहैया कराता है, पर्याप्त नहीं हैं । उनके अलावा कुछ अन्य पुस्तकें भी होनी चाहियें । (देखें - सारणी संख्या - 12)

अध्यापक और अटेंडेंस कमेटी के सदस्य प्राय: इस मत के हैं कि गांव के स्कूलों के पास इतना स्थान नहीं है कि कक्षाओं को अलग अलग बैठाकर पढ़ाया जा सके । (सारणी संख्या -13)

सारणी संख्या 8

क्या अध्यापकों की वर्तमान चयन और नियुक्ति प्रक्रिया सही है ?

उत्तरदाता	नहीं	नहीं	नहीं जानते	योग
अभिभावक	69 (22.8)	212 (70.2)	21 (7.0)	302 (100.0)
अटेंडेंस कमेटी के सदस्य	13 (14.4)	74 (82.2)	3 (3.3)	90 (100.0)
पंचायत सदस्य	8 (13.3)	46(76.7)	6 (10.0)	60 (100.0)

सारणी संख्या 9

अध्यापकों के चयन के आधार क्या हों ?

उत्तरदाता	स्थानीय क्षेत्र से	सब डिवीजन में से	जिले में से	जिले के बाहर से	कहीं से भी मेरिट के आधार पर	नहीं जानते	योग
अभिभावक	243 (25.9)	5 (0.5)	71 (7.6)	6 (0.6)	612 (65.3)	7	944 (100.0)
अध्यापक	78 (25.8)	6 (2.0)	43 (14.2)	2 (0.7)	173 (57.3)	7 (0.7)	302 (100.0)
अटेंडेंस कमेटी के सदस्य	28 (31.1)	3 (3.3)	10 (11.1)	-	49 (54.4)	-	90 (100.0)
पंचायत सदस्य	19 (31.7)	2 (3.3)	6 (10.0)	-	33 (55.0)	-	60 (100.0)
स्कूल इन्सपेक्टर	1 (3.3)	1 (3.3)	-	-	28 (93.3)	-	30 (100.0)

सारणी संख्या 10

प्राइमरी स्कूलों के लिए अध्यापकों की नियुक्ति कौन करे

उत्तरदाता	प्रबंध समिति	ग्राम पंचायत	पंचायत समिति	जिला परिषद	जिला विद्यालय निरीक्षक	डीपीएससी स्टेट बोर्ड	प्राइमरी शिक्षा	जिला स्कूल सेवा आयोग	नहीं जानते	योग
अभिभावक	63 (7.00)	36 (4.0)	10 (1.1)	8 (0.9)	31 (3.5)	29 (8.2)	13 (1.5)	706 (78.5)	48 (5.1)	944 (100.0)
अध्यापक	8 (2.6)	1 (0.6)	1 (0.6)	-	8 (2.6)	18 (6.0)	17 (5.6)	241 (80.0)	8 (2.6)	302 (100.0)
अटेंडेंस कमेटी के सदस्य	11 (12.2)	1 (1.1)	3 (3.3)	2 (2.2)	1 (1.1)	1 (1.1)	-	71 (78.9)	-	90 (100.0)
पंचायत सदस्य	7 (11.7)	5 (8.3)	1 (1.7)	1 (1.7)	1 (1.7)	1 (1.7)	1 (1.7)	43 (71.7)	-	60 (100.0)
स्कूल इन्सपेक्टर	-	-	-	-	2 (6.7)	-	-	28 (93.3)	-	30 (100.0)

सारणी संख्या 11

क्या गांव में पर्याप्त शैक्षिक सुविधाएं हैं

उत्तरदाता	हां	नहीं	नहीं जानते	योग
अभिभावक	635 (67.3)	289 (30.6)	20 (2.1)	944 (100.0)
अटेंडेंस कमेटी के सदस्य	57 (63.3)	33 (36.7)	-	90 (100.0)
पंचायत सदस्य	27 (45.0)	32 (53.3)	1 (1.7)	60 (100.0)

सारणी संख्या 12

क्या दी गई पाठ्यपुस्तकों के अलावा दूसरी पुस्तकें भी जरूरी हैं

उत्तरदाता	हां	नहीं	नहीं जानते	योग
अभिभावक	634 (67.2)	138 (14.6)	172 (18.2)	944 (100.0)
अध्यापक	233 (77.2)	67 (22.2)	2 (0.6)	90 (100.0)

सारणी संख्या 13

क्या गांव के स्कूलों में सब कक्षाओं को बैठाने के लिए पर्याप्त स्थान है

उत्तरदाता	हां	नहीं	नहीं जानते	योग
अध्यापक	96 (31.8)	206 (68.2)	-	302 (100.0)
अटेंडेंस कमेटी के सदस्य	31 (34.4)	59 (65.6)	-	90 (100.0)

इसी तरह अधिकतर अध्यापक, अटेंडेंस कमेटी के सदस्य और पंचायत सदस्य सोचते हैं कि बच्चों को बीच में ''न रोकने की नीति'' जो उस समय तक अस्पष्ट थी, वास्तव में छात्रों को शिथिल बनाती हैं और साथ में उन्हें अध्ययन के प्रति अगंभीर भी बनाती है । वे प्राय: 'न रोकने' और 'सतत मूल्यांकन' की नीति के विरोध में थे और उनकी जगह पुरानी परीक्षा व्यवस्था को ही चाहते थे । (देखें सारणी संख्या - 14-15)

अधिसंख्य अभिभावक, अटेंडेंस कमेटी के सदस्य और पंचायत सदस्यों की अध्यापकों के विरूद्ध शिकायतें भी थी । उनमें से अधिकतर के मतानुसार अध्यापकों की प्राइवेट ट्यूशन पूरी तरह बन्द होनी चाहिये । उनमें से बहुत सों ने सही सीखने-सिखाने के लिए आवश्यक स्कूल भवन, फर्नीचर और शिक्षण में सहायक सामग्री की कमी की ओर भी ध्यान दिलाया । (देखें - सारणी संख्या 16-17) ये सब बातें प्रकट करती हैं कि सरकार राज्य में प्राइमरी शिक्षा को गति देने में असफल हो गई है ।

ऐसा लगता है कि पंचायत व्यवस्था के जड़ जमा लेने और प्राइमरी शिक्षा के प्रशासन को विकेन्द्रित कर देने के बावजूद खास तौर पर प्राइमरी शिक्षा के लिये पिछले दो दशकों का वामपंथी शासन अधिक आनन्ददायी नहीं रहा ।

सारणी संख्या 14

न रोकने वाले नीति के प्रभाव

उत्तरदाता	स्कूलों में छात्रों को रोकने में सहायक है ।	स्कूलों में छात्रों की रुचि कम	छात्रों में रुचि बढ़ाती है ।	कुछ नहीं	नहीं जानते	योग
अभिभावक	61 (6.5)	751 (80.6)	106 (11.4)	14 (1.5)	12 (1.3)	944 (100.0)
अध्यापक	28 (9.2)	221 (72.2)	38 (12.4)	15 (4.9)	-	302 (100.0)
अटेंडेंस कमेटी के सदस्य	14 (15.6)	60 (66.7)	12 (13.3)	4 (4.4)	-	90 (100.0)
पंचायत सदस्य	7 (11.7)	46 (76.7)	5 (8.3)	2 (3.3)	-	60 (100.0)

सारणी संख्या 15

छात्रों की उपलब्धि जांचने का सर्वोत्तम तरीका

उत्तरदाता	पुरानी परीक्षा पद्धति	वर्तमान सतत मूल्यांकन	योग
अभिभावक	765 (81.0)	179 (19.0)	944 (100.0)
अध्यापक	249 (82.5)	53 (17.5)	302 (100.0)
अटेंडेंस कमेटी के सदस्य	65 (72.2)	25 (27.8)	90 (100.0)

सारणी संख्या 16

क्या कार्यरत अध्यापकों की प्राइवेट ट्यूशन

उत्तरदाता	पूरी तरह रोक दी जाये	प्रोत्साहित की जाये	सीमित कर दी जाए	कुछ नहीं जानते	योग
अभिभावक	640 (68.0)	131 (13.9)	170 (18.1)	3 (0.3)	944 (100.0)
अटेंडेंस कमेटी के सदस्य	65 (72.2)	5 (5.6)	20 (22.2)	-	90 (100.0)
पंचायत सदस्य	36 (60.0)	4 (6.7)	20 (33.3)	-	60 (100.0)

सारणी संख्या 17

गांव के स्कूल की स्थिति को लेकर अभिमत

(अ) स्कूल भवन

उत्तरदाता	संतोष जनक	कुछ संतोष जनक	असंतोष जनक	योग
अटेंडेंस कमेटी के सदस्य	15 (16.7)	36 (40.0)	39 (43.3)	90(100.0)
पंचायत सदस्य	1 (1.7)	29 (48.3)	30 (50.0)	60(100.0)

(ब) स्कूल फर्नीचर

उत्तरदाता	संतोष जनक	कुछ संतोष जनक	असंतोष जनक	योग
अटेंडेंस कमेटी के सदस्य	7 (7.8)	22 (24.4)	61 (67.8)	90(100.0)
पंचायत सदस्य	1 (1.7)	15 (25.0)	44 (73.3)	60(100.0)

(स) शिक्षण सहायक सामग्री

उत्तरदाता	संतोष जनक	कुछ संतोष जनक	असंतोष जनक	योग
अटेंडेंस कमेटी के सदस्य	7 (7.8)	28 (31.1)	55 (61.1)	90(100.0)
पंचायत सदस्य	4 (6.7)	20 (33.3)	36 (60.0)	60(100.0)

(द) निर्धारित पाठ्यपुस्तकों का वितरण

उत्तरदाता	संतोष जनक	कुछ संतोष जनक	असंतोष जनक	योग
अटेंडेंस कमेटी के सदस्य	22 (24.4)	30 (33.3)	38 (42.2)	90(100.0)
पंचायत सदस्य	13 (21.7)	27 (45.0)	20 (33.3)	60(100.0)

निष्कर्ष

निस्सन्देह क्षेत्रीय अध्ययन के निष्कर्षों और दस्तावेजी साक्ष्यों के उपरोक्त विवेचन से पश्चिम बंगाल की प्राइमरी शिक्षा की जो तस्वीर उभरकर सामने आती है वह पूरी तरह निराशाजनक है । यह कल्पना करना भी कठिन है कि निकट भविष्य में सार्वजनीन प्रारंभिक शिक्षा का क्रियान्वयन कैसे व्यावहारिक रूप से संभव होगा जबकि प्राइमरी शिक्षा व्यवस्था की ऐसी दयनीय हालत है ।

सचाई यह है कि तथाकथित प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण के बावजूद राजनैतिक लोगों और प्रशासनिक नौकरशाही के हाथ में सब कुछ केन्द्रित रहा है । पंचायतें और जिला स्तरीय शैक्षिक एजेंसियां जैसे डिस्ट्रिक्ट प्राइमरी स्कूल कौंसिलें और इंस्पेक्टरों के कार्यालय ऊपर के आदेशों की अनुपालना करवाने वाले ही बने रहे हैं । ये आदेश हमेशा सुस्पष्ट नहीं बल्कि आमतौर पर परोक्ष रहे हैं। यह बात भी नोट की जानी चाहिये कि कोई राजनीतिक पार्टी, जो तथाकथित लोकतांत्रिक केन्द्रीकरण के सिद्धांत पर आधारित होती है किसी भी सामाजिक गतिविधि के क्षेत्र में सच्चे विकेन्द्रीकृत प्रशासन को काम करने की आज्ञा दे ही नहीं सकती । ऐसा पश्चिम बंगाल में ही नहीं हुआ है। वास्तव में पश्चिम बंगाल में पंचायतें कोई स्वायत्तशासी संस्थाएं नहीं हैं, न ही वे लोगों की सामूहिक इच्छाओं के अनुसार चलती हैं । पार्टी लोगों की इच्छा का प्रतिनिधित्व करती है इसलिये पार्टी का हुक्म ही लोगों की इच्छा की सही अभिव्यक्ति माना जाता है । बल्कि यह लोगों की इच्छा की प्रमाणीकृत अभिव्यक्ति माना जाता है । याद रखना चाहिये कि पश्चिम बंगाल में ग्राम पंचायतें लोगों की पंचायतें नहीं हैं बल्कि वे पार्टी की पंचायतें है । यद्यपि औपचारिक तौर पर लोग उन्हें निर्वाचित करते हैं । यहां निर्वाचन कितने सही ढंग से होते रहे हैं यह दूसरी कहानी है जिसका विवेचन यहां उचित नहीं है ।

पश्चिम बंगाल पंचायती राज के दो दशकों में लगता है ग्राम समाज का भला करने की बजाय पंचायतों ने ग्राम की एकात्मकता को, जो उसके अस्तित्व का आधार थी, नष्ट कर अधिक बुरा किया है । ग्राम की एकात्मकता की जगह पार्टी की एकात्मकता स्थापित की गई है और इस प्रक्रिया में लोगों की पहल करने की क्षमता का गला घोंट दिया गया है । किसी काम को स्वत: करने की प्रवृत्ति,जो लोगों की पहल करने और विकेन्द्रीकृत कार्यप्रणाली का मूल आधार होती है, वह नष्ट हो चुकी है। पश्चिम बंगाल के अलग अलग भागों में पिछले दिनों हुई हिंसा इस राजनैतिक पंचायत प्रणाली का ही परिणाम है । इस पार्टी पंचायत प्रणाली से नये दफ्तरशाहों का ऐसा एक और वर्ग ग्राम समाज में उभर आया है जो बेहद भ्रष्ट और घोर सत्ता का भूखा है । दुर्भाग्यवश प्राइमरी अध्यापक जो स्वयं भी पंचायत सदस्यों का एक बड़ा समूह है, वह भी इस अपवित्र सत्ता के खेल में शामिल हैं । इसने भी प्राइमरी शिक्षा व्यवस्था को बिगाड़ा है । इन अध्यापकों से यह आशा करना व्यर्थ है कि वे सचमुच लोगों को शिक्षा के लिए प्रेरित करेंगे और इस प्रेरित आवश्यकता को अनुभूत आवश्यकता में रूपान्तरित कर देंगे। अधिक से अधिक वे शिक्षा के ऐसे कार्यक्रम को क्रियान्वित कर सकते हैं जो लोगों को नये मालिकों के प्रति वफादार और आज्ञाकारी बना दें । इसमें कोई शक नहीं कि किसी शिक्षा संबंधी कार्यक्रम की सफलता या विफलता मुख्यत: अध्यापकों पर निर्भर करती है। किसी भी शिक्षा के कार्यक्रम की योजना बनाने वालों का कोई भी इरादा या उद्देश्य रहा हो, अध्यापक उसे अपनी सुविधा और पूर्वाग्रह के अनुसार ढाल सकते हैं । वास्तव में अध्यापक किसी भी शिक्षा के कार्यक्रम को बना या बिगाड़ सकते हैं । अध्यापकों के लिये अपने वर्ग और जातीय पूर्वाग्रहों को जीत पाना बड़ा कठिन काम है, व खास तौर पर तब जब छात्रों के वर्ग या जातीय हित उनके अपने हितों से टकराते हों । पंचायतों ने ग्राम सभा में एक ऐसे अधिकारवादी शासन को चालू कर दिया है जो प्रबुद्ध अधिकारवाद न होकर अपरिष्कृत अधिकारवाद है ।

ध्यातव्य है कि प्राथमिक और प्रारंभिक शिक्षा का लक्ष्य केवल ''कार्यात्मक साक्षरता'', जिसका अर्थ मुख्यत: अक्षर और अंकों की कौशल प्राप्ति होता है, ही नहीं होता बल्कि सांस्कृतिक और आलोचनात्मक साक्षरता प्राप्त करना भी होता है। सांस्कृतिक साक्षरता व्यक्ति को उसकी अपनी सांस्कृतिक विरासत से और अपने लोगों के इतिहास से अवगत करवाती है। इस तरह के कार्यक्रम की सफलता के लिये एक पुरातात्त्विक दृष्टि की आवश्यकता होती है। आलोचनात्मक साक्षरता व्यक्ति को प्रचलित सामाजिक गति विज्ञान में उसकी वास्तविक स्थिति, खास तौर पर ग्रामीण समाज के भूमि संबंधी रिश्तों में उसके अपने लोगों की स्थिति से, अवगत करवाती है । इसके लिये परस्पर भागीदारी वाली पद्धति की आवश्यकता होती है। समाज के शोषणपरक और अन्यायपूर्ण ढांचे को बदलने के उद्देश्य से भाईचारे के कामों में लोगों की भागीदारी इस तरह के कार्यक्रम की सफलता के लिये एक जरूरी शर्त होती है ।

यह एक ऐसा विशाल काम है जिसमें बहुत अधिक समर्पण, कल्पना, सृजनात्मकता और सबसे ऊपर लोगों के साथ, बिना राजनीतिक दलीय भेदभाव के, व भाईचारे की भावना की जरूरत होती है । इसके लिए पहल और प्रेरणा नीचे से आनी चाहिये । एक सचमुच की लोगों की पंचायत इस तरह की प्रक्रिया को शुरू करने में बहुत बड़ा योगदान दे सकती है । अध्यापक और शिक्षा के संयोजक अगर अपने वर्ग और जातिगत पूर्वाग्रहों पर विजय पा लें और अपने आपको एक अहिंसात्मक भाईचारे के काम में,आयोजन में लगाने के लिये तैयार कर लें तो इस प्रक्रिया में एक अत्यन्त प्रभावी भूमिका अदा कर सकते हैं । इसके लिये बड़े विशाल पैमाने पर अध्यापकों के आमुखीकरण का कार्यक्रम हाथ में लेना होगा । सार्वजनीन प्रारंभिक शिक्षा कार्यक्रम के लिये पश्चिम बंगाल के कम से कम वर्तमान 40 हजार प्राइमरी स्कूलों को या तो कक्षा आठ तक जूनियर हाई स्कूल या अपर प्राइमरी स्कूल में क्रमोन्नत करना होगा और प्रारंभिक स्तर की शिक्षा देने के लिए दो लाख से कुछ अधिक अध्यापक नियुक्त करने होंगे और एक मोटे अन्दाजे के अनुसार एक लाख साठ हजार नये कमरे बनवाने होंगे। लगभग चार लाख प्रारंभिक शिक्षकों के लिए आमुखीकरण कार्यक्रम चलाना होगा । वर्तमान राजनैतिक परिस्थिति में इस तरह के कार्यक्रम की सार्थक पहल अकल्पनीय है । अफसोस है कम्युनिस्ट नेतृत्त्व वाली वामपंथी सरकार ने, जो पिछले 24 सालों से लगातार शासन कर रही है, इस अवसर को खो दिया है ।

(इस शोध पत्र में ''स्कूल शिक्षा के प्रशासन और प्रबन्धन की समस्याएं'' विषय पर 1994-95 में पश्चिम बंगाल के तीन जिलों पर किये गये शोध अध्ययन का उपयोग किया गया है। इस अध्ययन को शिक्षा भावना कोलकाता ने अपने हाथ में लिया था और इसेतिरूवनन्नतपुरम ' मानव विकास के लिये रणनीतियां और वित्त प्रबंधन पर शोध परियोजना' की एक राष्ट्रीय परियोजना पर यूएनडीपी द्वारा प्रदत्त वित्तीय सहायता से पूरा किया गया है । मैं उन तमाम संगठनों और मेरे सहकर्मियों को, जिन्होंने मुझे इस अध्ययन को पूरा करने में सहायता दी, धन्यवाद देता हूं ।)

टिप्पणियां

1. प्राय: दावा किया जाता है कि पश्चिम बंगाल में तेजी से साक्षरता दर में वृद्धि हुई है, इसका कारण नवंबर दिसंबर 1990 में तीन जिलों- मेदिनीपुर,

बर्दवान और गुगली में शुरू हुआ संपूर्ण साक्षरता अभियान रहा है। फिर भी इस दावे को ठोस तथ्यों के आधार पर सिद्ध करना कठिन है । वास्तव में पश्चिम बंगाल में कोई जिला सम्पूर्ण साक्षरता अभियान 1991 की जनगणना से पहले ठोस प्रगति नहीं कर पाया था । केवल बर्दवान ही ऐसा जिला था जिसने मई 1991 तक संपूर्ण साक्षरता का लक्ष्य पा लिया था । बर्दवान में भी दिसंबर 1990 तक वास्तविक सीखने-सिखाने की प्रक्रिया शुरू नहीं हुई थी । फरवरी 1991 तक भी इस बारे में प्रगति बहुत धीमी और सुस्त थी । और किसी भी दशा में 12 लाख निरक्षरों के लक्षित समूह को फरवरी 1991 के अन्त तक साक्षर बना देना संभव नहीं था । असल में तो उस लक्षित तारीख को इसकी वजह से दो महिने आगे सरकाना पड़ा था । लेकिन उस समय तक 1991 की जनगणना खत्म हो चुकी थी । संपूर्ण साक्षरता अभियान का पहला बाहरी आन्तरिक मूल्यांकन पश्चिम बंगाल के बर्दवान जिले में फरवरी 1991 में हुआ । इस अन्तरिम मूल्यांकन की रिपोर्ट राष्ट्रीय साक्षरता मिशन के ई. सी. के सामने दिल्ली में 1991 में रखी गई। उस रिपोर्ट में प्रगति का लेखा जोखा था । (आचार्य 1991)

मेदनीपुर ने यद्यपि बर्दवान से भी पहले अभियान का काम शुरू कर दिया था जो शुरू में मुश्किल से ही प्रगति कर पाया । उन्होंने वास्तव में जनवरी 1991 में दुबारा से सारी प्रक्रिया को फिर से व्यवस्थित किया । 1991 वाली जनगणना तक अभियान गति पकड़ने की अवस्था में ही था । इसमें कोई हैरानी की बात नहीं कि मेदनीपुर ने 1991 की जनगणना के काफी समय बाद संपूर्ण साक्षरता अभियान की समाप्ति जिले में संपूर्ण साक्षरता का लक्ष्य पा लेने के दावे के साथ घोषित कर दी। हुगली में भी अभियान को शुरू में काफी कठिनाई उठानी पड़ी। लेकिन उसने बर्दवान की घोषणा के कुछ ही महिनों बाद जिले के साक्षर हो जाने की घोषणा कर दी । उल्लेखनीय है कि जलपाई गुड़ी जिला, जिसने 1991 की जनगणना के काफी समय बाद संपूर्ण साक्षरता अभियान चालू किया, ने साक्षरता में 9.99% वृद्धि की उपलब्धि दर्ज करवाई जबकि हुगली की साक्षरता वृद्धि 9.68 % ही 1991 की जनगणना में प्रदर्शित हुई। अब यह तथ्य लगभग सभी लोगेां के सामने आ गया है कि पश्चिम बंगाल के विभिन्न जिलों के संपूर्ण साक्षरता प्राप्ति के दावे आंशिक विश्वसनीयता ही लिए हुए हैं ।

2. 'किसी को रोकना नहीं' और 'सतत मूल्यांकन' ये नीति संबंधी निर्णय अंग्रेजी को प्राइमरी स्तर से हटाने के साथ पश्चिम बंगाल में बड़े आन्दोलन के मुद्दे बन गये । यह एक उदाहरण है कि कैसे शिक्षाशास्त्रीय दृष्टि से सही नीतियां भी अच्छे परिणाम देने के बजाय शैक्षिक प्रक्रिया में अत्यधिक दिशाभ्रम पैदा कर सकती हैं जब उन्हें अकुशल तरीके से लागू करने की कोशिश की जाती है । पश्चिम बंगाल के प्रशासन की अयोग्यता और अनाड़ीपन इन घपलेबाजियों से सामने आ गया । इन घपलों के लिये राजनीतिक दखलंदाजी कितनी जिम्मेदार रही है यह एक दूसरे शोधपत्र का विषय हो सकता है ।

संदर्भ

परमेश आचार्य 1991 द स्पेशल प्रोग्राम फोर टोटल इरेडिकेशन ऑफ इल्लिट्रेसी, बर्दवान, ए क्रिक अप्रेजल, मोनोग्राफ, कोलकाता ।

1994 प्रोबलम्ज ऑफ यूनिवर्सल एलिमेंट्री एज्यूकेशन, इकोनोमिक एण्ड पोलिटिकल वीकली, दिसंबर 3, मुंबई ।

1996 एज्यूकेटिंग वैस्टबंगाल/प्रोबलम्ज ऑफ पार्टिसिपेटरी मैनेजमेन्ट, पहली और दूसरी रिपोर्ट (मोनोग्राफ) शिक्षा भावना, कोलकाता।

1998 लॉ एन्ड पोलिटिक्स ऑफ प्राइमरी एज्यूकेशन इन बंगाल, इन दि कांटेस्टिड टैरेन, संपा. सव्यसाची भट्टाचार्य, ओरिएन्ट लोंग मैन, दिल्ली ।

1999 एज्यूकेशन, एज्यूकेशन एवरी व्हेयर बट नोब्रेक फ्रॉम कोलोनियम सिस्टम, मैन एण्ड डवलपमेन्ट दिसम्बर, चंडीगढ़ ।

ज्ञानव्रत भट्टाचार्य 1991 टुवार्ड्स ए कम्यूनिटी डवलपमेन्ट अप्रोच टु लिट्रेसी, जर्नल आफ कम्यूनिटी डवलपमेन्ट सोसायटी खंड 22 संख्या - 2, यू. एस. ए.

के. वी. ईश्वर प्रसाद1987 वेस्टेज स्टेगनेशन एन्ड इन इक्वेलिटीएवं आर.सी. शर्मा ऑफ अपोर्चनिटी इन रूरल प्राइमरी एज्यूकेशन, मोनोग्राफ एम आर डी, दिल्ली ।

आर. गोविन्द 1997 डिसैन्ट्रेलाइजेशन आफ एज्यूकेशन मैनेजमेन्ट, एक्सपीरियेन्सेज फ्रॉम साउथ एशिया, आई आई ई पी, पेरिस

इकबाल नारायण 1972 रूरल लोकल पोलिटिक्स एन्ड प्राइमरी स्कूल्ज मैनेजमेन्ट, इन एज्यूकेशन एन्ड पोलिटिक्स इन इन्डिया, एस. के. एवं आर. सी.शर्मा डोल्फ एन्ड एल. आइ. रूडोल्फ, ओक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, देहली ।

रेखा कौल 2001 एक्ससिंग प्राइमरी एज्यूकेशन : गोइंग बियोन्ड द क्लाइसरूम, इकोनोमिक एन्ड पोलिटिकल वीकली जनवरी 13-19, मुंबई।

बी.जी. खेर 1954 रिपोर्ट ऑफ दि कमेटी ऑन दि रिलेशनशिप बिटवीन स्टेट गवर्नमेन्ट एन्ड लोकल बोडीज इन दि एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ प्राइमरी एज्यूकेशन, दिल्ली ।

एल. के. ओड 1989 प्राइमरी एज्यूकेशन अन्डर पंचायतीराज : ए केस स्टडी इन स टडीज इन एज्यूकेशन रिफोर्म्ज इन इन्डिया खंड 2 संपा.पी आर. पंचोखी, मुबई ।

क्विनक्वेनियल रिव्यू 1959 क्विनक्वेनियल रिव्यू ऑन दि प्रोग्रेस ऑफ एज्यूकेशन इन वैस्ट बंगाल, फोर दि पीरियड 1947-48 टु 1951-52, गवर्नमेन्ट ऑफ वैस्ट बंगाल, कलकत्ता

समर गुड्डाराय, सुवीर मित्रा 1995 अचीवमेट लेवल ऑफ प्राइमरी स्कूल चिल्ड्रन एट दि एन्ड ऑफ क्लास फोर, एस. सी.ई.आर.टी. एन्ड सुना एस राय एन्ड आई एस आई, कलकत्ता, मोनोग्राफ ।

सैप्टेनियल रिव्यू 1970 सैप्टेनियल रिव्यू ऑन दि प्रोग्रेस ऑफ एज्यूकेशन फोर दि पीरियड 1957-58 टु 1964-65 गवर्नमेन्ट ऑफ वैस्ट बंगाल, कलकत्ता ।

जे. एम.सैन 1941 हिस्ट्री ऑफ एलिमेन्ट्री एज्यूकेशन इन इन्डिया, दि बुक कम्पनी लि. कलकत्ता ।

जोन सार्जेन्ट 1944 पोस्टवार एज्यूकेशनल डवलपमेन्ट इन इन्डिया, रिपोर्ट बाई सीएबीई, इलाहाबादऋ ।

ऐरिक स्टोक्स 1992 दि इंग्लिश यूटिलिटेरियन्ज एन्ड इन्डिया, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली ।